अरूणा शानबाग की मौत: क्या बदला 42 वर्षों में

-वीणा भाटिया

कुछ ही दिनों पहले 62 साल की अरूणा रामचंद्र शानबाग की 42 वर्षों तक लगातार कोमा में रहने के बाद मृत्यु हो गई। ज़्यादातर लोग अरूणा शानबाग के बारे में नहीं जानते हैं। उनकी मौत के बाद मीडिया में आई ख़बरों के माध्यम से कुछ लोग उन्हें जानने लगे, पर जल्दी भूल भी जाएंगे। पर क्या अरूणा शानबाग को आसानी से भुलाया जा सकता है? और वो भी तब जब वे कोई असाधारण महिला नहीं थीं। पर अरूणा शानबाग के जीवन और उनकी मौत में कुछ तो असाधारणता है, जिसने संवेदनशील लोग़ों, बुद्धिजीवियों और महिला अधिकारों के लिये लड़ने वाले लोग़ों के दिलो-दिमाग में एक जुम्बिश पैदा की है। एक हलचल-सी पैदा हुई है जो दिलों के सुकून पर भारी है। अरूणा की मौत ने एक बार फ़िर से उन सवालों को हमारे सामने जलते हुए अंगारों के रूप में सामने रख दिया है, जिनसे हम मुंह चुरा कर बच नहीं सकते।

42 साल पहले मुंबई के, के इ एम अस्पताल में कार्यरत नर्स अरूणा के साथ अस्पताल के ही बेसमेंट में बर्बर बलात्कार हुआ था। वह उस समय 25 वर्ष की थीं और जल्दी ही उसकी शादी होने वाली थी। अरूणा के साथ बलात्कार अस्पताल के ही एक वार्ड ब्वॉय सोहन लाल ने किया था जो पहले से ही उस पर बुरी नज़र रखता था। बलात्कार के पहले उसने अरूणा के गले में कुत्ते की चेन बांध दी थी, जिससे उसके मस्तिष्क में ऑक्सीजन का प्रवाह रूक गया, और वह कोमा में चली गईं। सोहन लाल को गिरफ़्तार कर लिया गया, पर सबूतों के अभाव में उस पर बलात्कार का मुकदमा नहीं चल सका। कोमा में चली जाने के कारण अरूणा कोई ब्यान दे पाने में असमर्थ थीं। तत्काल मेडिकल जांच में बलात्कार की पुष्टि नहीं हुई। पता नहीं, डॉक्टरों पर किस तरह का उच्च स्तरीय दबाव था। पर बाद में मेडिकल जांच में अरूणा के साथ बलात्कार की पुष्टि हुई, लेकिन अभियुक्त सोहन लाल पर सिर्फ़ हत्या के प्रयास और लूट का मामला दर्ज़ हुआ। उसने अरूणा की सोने की चेन और सगाई की अंगूठी छीन ली थी। सोहन लाल को महज़ सात साल की सज़ा हुई। और अरूणा शानबाग अगले 42 वर्षों तक ज़िंदा लाश बनी के इ एम अस्पताल के वार्ड नं. 4 में जीवन और मौत से अनभिज्ञ पड़ी रही। इन 42 वर्षों के दौरान के इ एम अस्पताल की नर्सों ने अरूणा शानबाग की जो सेवा की, वह मेडिकल इतिहास में एक मिसाल है। उनकी मृत्यु के बाद वहां की नर्सों को एक अजीब-से खालीपन ने घेर लिया है। यद्यपि अरूणा शानबाग के कोमा में होने के कारण उनका अस्तित्व महज भौतिक रूप में ही था, पर इतना भी वहां की नर्सों को एक संबल प्रदान करता था और उनके अपने अस्तित्व को भी रेखांकित करता था। अब

यह स्थिति निम्नवर्ग से लेकर तमाम वंचित वर्ग की स्त्रियों के साथ है। मध्य और उच्च वर्ग की महिलाओं के साथ बर्बर बलात्कार की घटनाएं कम ही होती हैं। कुछ अपवादों के सिवा। यह अलग बात है कि यौन शोषण के मामले हर वर्ग और समुदाय की स्त्रियों के साथ कमोबेश होते ही हैं, पर निम्न और वंचित वर्ग की स्त्रियां बलात्कारियों की आसान शिकार होती हैं, चाहे देहात हो, शहर या महानगर। स्त्रियों को अपना शिकार बनाने वाले भेड़िये तरह-तरह के रूप में घूमते नज़र आ जाते हैं। ये आवारागर्द तत्वों से लेकर प्रभावशाली, दबंग अपराधी और अय्याश अमीरजादे तक होते हैं जिन्हें न क़ानून का भय होता है और न ही न्यायालय का, क्योंकि अपने अनुभवों और पूर्व उदाहरणों से ये भली-भांति समझ जाते हैं कि क़ानून उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता, अगर वे किसी भी तरह उसे अपने पक्ष में प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं।

वहां खालीपन के साथ उनके अस्तित्व पर एक स्त्री होने की वजह से सवाल अब भी उसी रूप में है, जैसे 42 वर्ष पहले था। उनकी इज्जत महफ़ूज नहीं है। उनकी सुरक्षा ख़तरे में है। पुरुष समाज में उनकी दोयम दर्जे की स्थिति बरकरार है।

यह स्थिति निम्नवर्ग से लेकर तमाम वंचित वर्ग की स्त्रियों के साथ है। मध्य और उच्च वर्ग की महिलाओं के साथ बर्बर बलात्कार की घटनाएं कम ही होती हैं। कुछ अपवादों के सिवा। यह अलग बात है कि यौन शोषण के मामले हर वर्ग और समुदाय की स्त्रियों के साथ कमोबेश होते ही हैं, पर निम्न और वंचित वर्ग की स्त्रियां बलात्कारियों की आसान शिकार होती हैं, चाहे देहात हो, शहर या महानगर। स्त्रियों को अपना शिकार बनाने वाले भेड़िये तरह-तरह के रूप में घूमते नज़र आ जाते हैं। ये आवारागर्द तत्वों से लेकर प्रभावशाली, दबंग अपराधी और अय्याश अमीरजादे तक होते हैं जिन्हें न क़ानून का भय होता है और न ही न्यायालय का, क्योंकि अपने अनुभवों और पूर्व उदाहरणों से ये भली-भांति समझ जाते हैं कि क़ानून उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता, अगर वे किसी भी तरह उसे अपने पक्ष में प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं।

अरूणा शानबाग के मामले में क़ानून अपना काम कर पाने में असफल रहा। वह एक बर्बर अपराधी के पक्ष में झुक गया। ऐसा क्यों? इसलिए कि ऐसी लोमहर्षक घटना को किसी ने गंभीरता से नहीं लिया। न अस्पताल प्रशासन, न पुलिस और न ही न्यायालय ने इस मामले में संवेदनशीलता दिखाई। सबूत इकट्ठे नहीं किए गए। मेडिकल जांच में डॉक्टरों ने कोताही बरती, क्योंकि अरूणा एक सामान्य नर्स थी। दूर-दराज के किसी गांव से नौकरी करने मुंबई जैसे महानगर में आई थी। हज़ारों-लाखों ऐसी औरतें गांवों से पलायन कर रोज़ी-रोज़गार के लिये महानगरों में आती हैं। कौन उनकी इज़्ज़त की परवाह करता है! इतना ही नहीं, स्त्रियों की इज़्ज़त की जो गलत अवधारणा भारतीय मानस में गहराई से जड़ जमाये हुए है, वह भी बलात्कार की संस्कृति को बढावा देने के लिये जिम्मेदार है। बलात्कार या यौन शोषण का मामला सामने आने पर परिवार के लोग उसे दबाना चाहते हैं। उनका मानना होता है कि मामला प्रकाश में आ जाने पर परिवार की बेइज़्ज़ती होगी। यही कारण है कि बलात्कार के अधिकांश मामलों में पुलिस में रिपोर्ट होती ही नहीं। अरूणा शानबाग मामले में भी उसके होने वाले पति ने मामले की शिकायत पुलिस में दर्ज़ कराए जाने का विरोध किया था। दूसरी तरफ़, पुलिस में मामला दर्ज़ कराए जाने के बावजूद न्यायिक प्रक्रिया की विसंगतियों के कारण शायद ही पीड़िताओं को न्याय मिल पाता है।

अरूणा शानबाग का मामला बहुत ही पुराना है। इस मामले को लेकर 'ऐच्छिक मृत्यु' को न्यायपालिका ने वैधता प्रदान किया, ये अलग बात है कि अरूणा शानबाग की सेवा में लगी नर्सों ने इसे अरूणा पर लागू किए जाने से इनकार कर दिया। बहरहाल, बलात्कार की शिकार स्त्री किस तरह एक ज़िंदा लाश बन जाती है, यह स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ा अरूणा के 42 साल तक कोमा में रहने के दौरान, यद्यपि उनकी जितनी देख-रेख इस दौरान के इ एम की नर्सों ने की, वह भी एक मिसाल ही है।

भारतीय समाज और संस्कृति में बलात्कार की जड़ें बहुत ही गहरी हैं। अभिजात वर्ग बलात्कार को अपना परमाधिकार समझता रहा है। सामंती समाज से लेकर आज तक के संक्रमणशील दौर में बलात्कार स्त्रियों पर अत्याचार का औज़ार बना हुआ है। बलात्कार की हर घटना के बाद जब इसका बड़े पैमाने पर विरोध होता है तो लगता है कि इस प्रवृत्ति पर कुछ लगाम लगेगी। लेकिन बलात्कार के मामलों पर क़ानून सख़्त किए जाने की जितनी बात होती है, बलात्कार की घटनाएं और भी बढ-चढ कर सामने आने लगती हैं, मानो बलात्कारी क़ानून और शासन व्यवस्था को खुलेआम चुनौती देना चाहते हों। 2012 में दिल्ली निर्भया गैंग रेप की घटना के बाद बलात्कार संबंधी क़ानूनों की पुनर्समीक्षा की गई और इस संबंध में नये सिरे से क़ानूनों को परिभाषित किया गया। लेकिन क़ानून के भय से बलात्कार की घटनाओं में कोई कमी नहीं आई, बल्कि ये घटनाएं बढी ही हैं। आंकड़े इसके गवाह हैं।

इससे स्पष्ट होता है कि बलात्कार की समस्या क़ानून-व्यवस्था से जुड़ी समस्या नहीं है, बल्कि यह समाज व्यवस्था से जुड़ी समस्या है। अमीरी-ग़रीबी और शोषण-दमण पर आधारित इस व्यवस्था में बलात्कार को मिटा पाना संभव नहीं है। पुरुष वर्चस्व और हर स्तर पर स्त्री उत्पीड़न शोषण मूलक व्यवस्था का अपरिहार्य गुणधर्म है। यह हज़ारों वर्षों से बदस्तूर क़ायम है क़ानूनी उपायों और सुधारवादी प्रयासों से बलात्कार और स्त्री उत्पीड़न के विविध रूपों को समाप्त नहीं किया जा सकता है। स्त्री की वास्तविक आज़ादी एक समतावादी समाज में ही संभव है। शोषण पर आधारित सामाजिक व्यवस्था में स्त्री का स्थान दोयम दर्जे का है और रहेगा, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। यह ऐतिहासिक तथ्य है। स्त्री उत्पीड़न के रूप पूरी दुनिया में कमोबेश एक ही हैं। इसलिए, स्त्री मुक्ति का संघर्ष सामाजिक व्यवस्था के बदलाव के संघर्ष से अलहदा नहीं हो सकता।

गणेश शंकर विद्यार्थी: एक परिचय

आज जब देश के किसी न किसी कोने से जब तक हम साम्प्रदायिक तनाव या हिंसा की खबर सुनते हैं तो शहीद-ए-आजम भगत सिंह जैसे क्रांतिकारी व गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे पत्रकारों की बरबस ही याद आ जाती है। देश संघ द्वारा प्रायोजित हिन्दू फ़ासीवाद की प्रयोगशाला बना हुआ है। अल्पसंख्यकों तथा उनके प्रार्थना स्थलों पर हमले किये जा रहे हैं। ऐसे में गणेश शंकर विद्यार्थी के बारे में जानना बेहतर होगा, जिन्हें कानपुर में हुए साम्प्रदायिक दगों को रोकने के दौरान उन्मादी भीड़ ने मार डाला गया।

गणेश शंकर विद्यार्थी का जन्म 26 अक्टूबर 1890 में हथगांव में हुआ। उनके पिता मध्यप्रदेश के एक स्कूल में अध्यापक थे। गणेश शंकर विद्यार्थी ने अपनी प्राथमिक शिक्षा वहीं से प्राप्त की। 1905 में हाईस्कूल पास किया आर्थिक तंगी के कारण वे अपनी आगे की पढाई जारी नहीं रख सके। पढाई बीच में रोककर उन्होंने करंसी ऑफिस में क्लर्क के पद पर नौकरी की तथा बाद में हाईस्कूल, कानपुर में अध्यापन का कार्य किया। परन्तु उनकी प्रमुख पसंद पत्रकारिता व समाज में चल रही गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी करना था।

देश में आजादी के आन्दोलन के उभार के साथ गणेश शंकर विद्यार्थी पत्रकारिता करने लगे। उन्होंने प्रारम्भ में कर्मयोगी तथा स्वराज में लिखना शुरू किया। गणेश शंकर विद्यार्थी ज्ञान की खोज में लगे रहने वाले व्यक्ति थे। इसी दौरान वे पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पर्क में आये और द्विवेदी जी ने उन्हें सरस्वती पत्र में उप सम्पादक के पद पर कार्य करने के लिये आमंत्रित किया।

1913 में वे कानपुर वापस आ गये जहां उन्होंने अपने को एक जुझारू पत्रकार एवं स्वतंत्रता सेनानी के रूप में स्थापित किया। उन्होंने प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र प्रताप निकाला, जो 1920 में दैनिक पत्र के रूप में छपने लगा था। प्रताप पत्र जुझारू, गरीब मज़दूर-किसानों तथा पददलितों की आवाज को उठाता था। इसका अधिकतर वितरण मज़दूरों व किसानों के बीच होता था। उन्होंने अपने को देश के पददलितों व वंचितों के साथ जोड़ा। उन्होंने रायबरेली के प्रसिद्ध किसानों व मज़दूरों के मुद्दों को अपने पत्र के माध्यम से उठाया। इस दौरान उन पर बहुत से मुकदमे चले, जिसके चलते गणेश शंकर विद्यार्थी पर आर्थिक दण्ड के अलावा पांच साल के लिए जेल भी जाना पड़ा। इसके अलावा उन्होंने कानपुर के टेक्सटाइल उद्योग में लगे मज़दूरों की हड़ताल का नेतृत्व किया।

1920 में ही उन्हें किसानों के आन्दोलन को आगे बढाने पर दो साल का सश्रम कारावास दिया गया। 1922 में रिहा हुए परन्तु फ़तहगढ में एक भाषण में राजद्रोह भड़काने के आरोप में पुन: गिरफ़्तार कर लिया गया। 1924 में वे रिहा हुए। इस दौरान उनकी सेहत बहुत तेजी से गिरी। 1925 में जब प्रांतीय विधान मंडलों के चुनाव हुए तो उसमें वे कानपुर से विजय घोषित हुए। 1929 तक उन्होंने विधान मंडल के सदस्य के बतौर काम किया। 1929 में उन्होंने कांग्रेस नेतृत्व के कहने पर यह पद छोड़ दिया। 1929 में उत्तरप्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष चुने गये वे उत्तर प्रदेश में सत्याग्रह आन्दोलन को नेतृत्व देने वाले पहले सत्याग्रही बने। 1930 में वे पुन: गिरफ़्तार कर लिये गये।

गणेश शंकर विद्यार्थी वैसे तो कांग्रेसी थे लेकिन क्रांतिकारियों के लिये उनके दिल में बहुत प्रेम व श्रद्धा थी। वे क्रांतिकारियों की गुप्त रूप से मदद करते थे। कानपुर में प्रताप का कार्यालय क्रांतिकारियों का गढ हुआ करता था। भगत सिंह भी बलवंत सिंह के नाम से प्रताप में लेख लिखा करते थे। प्रताप शीघ्र ही राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ-साथ मज़दूरों-मेहनतकशों की आवाज व धर्मनिरपेक्षता का एक सशक्त प्रतिनिधि व मुखर स्वर बन गया।

1930 में वे कांग्रेस के कराची अधिवेशन में हिस्सा लेने को जाने की तैयारी कर रहे थे कि कानपुर में दंगे फूट पड़े। गणेश शंकर विद्यार्थी अपनी जान की परवाह किये बगैर इन दंगो की आग बुझाने के लिए खुद इस आग में कूद गये। उन्होंने लगातार 5 दिनों तक हजारों हिन्दू-मुसलमानों की जान बचाई और वे दोनों तरफ़ के दंगाइयों को अपने नैतिक आग्रह सें नफरत व हिंसा त्यागने की अपील करते दंगाग्रस्त शहर में घूमते रहे। इसी समय 25 मार्च, 1931 को दंगाइयों की उन्मादी भीड़ के हाथों वे मारे गये।

-नागरिक

तुर्की-ब-तुर्की

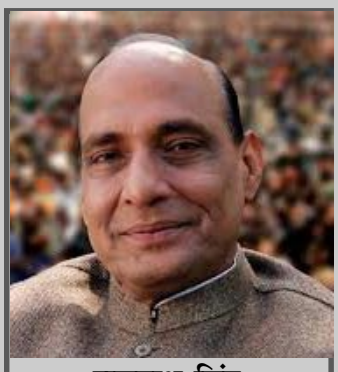

राजनाथ सिंह

''जब अकबर को महान कहते हैं तो राणा प्रताप को भी महान् कहना चाहिये।'' (राजस्थान सरकार के इस विवादित निर्णय की पृष्ठभूमि में गृहमंत्री राजनाथ सिंह ने उपरोक्त टिप्पणी की- पाठ्य पुस्तकों में 'मुस्लिम' शासक अकबर की बजाय 'हिन्दू' राणा प्रताप को महान् लिखा जायेगा)

हमारा कहना है:-

आप जैसे संकीर्ण राजनीति करनेवालों को राजनाथ सिंह जी महाराणा प्रताप जैसे इतिहास के महानायक को महानता का प्रमाणपत्र देने की जरूरत हास्यास्पद ही कहलायेगी। आप तो 'मोदी महान' कहते ही अच्छे लगते हो। कहीं ऐसा तो नहीं कि आप राणा प्रताप को भी अपने जैसा एक जातिवादी क्षत्रीय सिद्ध करने में लगे हो ताकि आपका राजनीतिक उल्लू सीधा होता रहे।

कोई भी भारतवासी राणा प्रताप और अकबर को महान मानने से गुरेज नहीं करता। इसके लिये उसे आप जैसों की सलाह नहीं चाहिये। अगर सलाह देनी ही है तो कृप्या अपनी पार्टी की राजस्थान सरकार को दीजिये जो हिन्दुत्व के झांसे में जनता को लपेटने के लिये एक महान को दूसरे महान से भिड़ाने का खेल खेल रही है। अकबर और प्रताप दोनों ही भारत की मिलीजुली संस्कृति का प्रतीक हैं। जबकि राजस्थान की वसुंधरा राजे सरकार उन्हें हिन्दू और मुसलमान के खांचे में बांटने का षड़यन्त्र रच रही है। क्या आप लोग इस महान देश की जनता को इतना बेवकूफ़ समझते हैं?

यह तो तय है कि भाजपाइयों और संघियों की इतिहास की समझ उनके खाक़ी नेकर में समाई हुई है। राजनाथ सिंह जी क्या आपको प्रसिद्ध हल्दी घाटी युद्ध का तनिक भी आभास है? इस कांटे की लड़ाई में अकबर की फ़ौजों का नेतृत्व हिन्दू राजपूत राजा मानसिंह कर रहे थे। दूसरी ओर राणा प्रताप की फ़ौज़ों का नेतृत्व मुस्लिम अफ़गान जनरल इब्राहिम खां सूर कर रहे थे। यह हिन्दू बनाम मुसलमान युद्ध नहीं था बल्कि केन्द्रीय शक्ति बनाम क्षेत्रीय शक्ति के बीच खींचतान का मसला था। अकबर चाहता था कि देश के अन्य हिन्दू राजाओं की भांति आन्तरिक स्वायतता के आधार पर राणा प्रताप का मेवाड़ भी उसके शासन के साथ संधि कर ले। जबकि राणा प्रताप को पूर्ण स्वाधीनता से नीचे कुछ मंजूर नहीं था। आज तक भी मेवाड़ राज्य की ओर से साम्प्रदायिक सद्भाव के लिये सूर पुरस्कार दिया जाता है।

अगर आपकी मोटी बुद्धि में राजनाथ सिंह जी अब भी भारत की सांस्कृतिक एवं राजनीतिक विरासत नहीं बल्कि साम्प्रदायिक जहर ही भरा हो तो इस बात को आज के संदर्भ में समझाते हैं। दिल्ली में फ़िलहाल मोदी बनाम केजरीवाल चल रहा है जो एक तरह से केन्द्रीय सत्ता बनाम क्षेत्रीय आकांक्षा की रस्साकशी ही है। क्या इसे आप निम्न बनिया (मोदी) बनाम उच्च बनिया (केजरीवाल) की जातिगत लड़ाई कह सकते हैं? अरे भाई तुम लोग मोदी-मोदी जपते ही ठीक लगते हो क्योंकि उसी के दम पर तुम्हारी कुर्सी सलामत है।